Chapter-5

# पंचम अध्याय

# अखा की दार्शनिक विचारधारा

# पंचम अध्याय

## अखा की दार्शनिक विचार-धारा

अखा के सूक्ष्म दार्शनिक विचारों को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें उनकी एक ही दो कृतियों पर नहीं प्रत्युत समस्त रचनाओं पर विचार करना होगा। ऐसा करने से हमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि अखा का आध्यात्मिक अनुभव उपनिषदों के ऋषियों का-सा " सर्वं खलु इदं ब्रह्म[1], " " पूर्णमद: पूर्णमिदं[2] "..... का है। अपने इस अनुभव-दर्शन को बहुजनहिताय या स्वान्त: सुखाय अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने वेदांत के प्रचलित दृष्टांतों का उपयोग किया है। इन दृष्टांतों के वैविध्य एवं वैभिन्य के कारण अखा के दार्शनिक पक्ष की समीक्षा करते समय आलोचक को सतर्कता के साथ बरतने की आवश्यकता है। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के हेतु अखा ने जिन दृष्टांतों को ग्रहण किया है वे पूर्ववर्ती काल के दर्शनों के आचार्यों द्वारा प्रस्तुत किये गये थे। ब्रह्म और जीव की एकता स्थापित करने की दृष्टि से अखा ने " लोहा और चुंबक ", " लोहा और पारस ", " कुंडल और सुवर्ण ", " लहर और सागर ", " किरण और सूर्य " आदि के दृष्टांतों का प्रयोग किया है। किंतु इनमें से " लोहा और चुंबक " वाले दृष्टांत के लिए कहा जा सकता है कि जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित करने में वह उतना सटिक नहीं है जितना कि " लहर और सागर " का दृष्टांत। क्योंकि चुंबकत्व के कारण लोहे में

---

१. छांदोग्योपनिषद: ३ - १४

२. बृहदारण्यकोपनिषद: पृ०१

समानता-आकर्षण-शक्ति तो आती है किंतु लोहा चुंबक में जलतरंगवत् मिल नहीं जाता, निष्क्रिय वस्तु के रूप में चुंबक के साथ जुड़े रहने के कारण लोहे की स्वतंत्र सत्ता बनी ही रहती है। यह स्थिति " लोहा और पारस " के लिए भी है। पारस के स्पर्श से लोहा " सुवर्ण " होता है; पारस होकर पारस में एकरूप नहीं। इस प्रकार " लोहा " और " चुंबक " तथा " लोहा और पारस " के दृष्टांतों को क्रमशः " विशिष्टाद्वैत " और " द्वैत मत " में प्रतिपादित जीव और ब्रह्म के संबंध सूचक गिना जा सकता है। क्योंकि विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव को ब्रह्म के स्वरूप और गुणों की प्राप्ति हो जाती है किंतु ब्रह्म के साथ मिलकर वह एकाकार नहीं होता, जबकि माध्व मत के अनुसार प्राप्त मुक्ति में भी भगवान और जीव का द्वैत बना ही रहता है।

अखा की समस्त रचनाओं का मनोयोगपूर्ण अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि अखा की विचारधारा की परिणति ब्रह्म और जीव की एकता में है। अखा को इन एकरूपता-ऐक्य-अभेद -भेद के अनस्तित्व अर्थात् " अजात " के अनुभव की कहानी कहनी है। इस स्वानुभूति के कथन में अखा ने अपने समय में प्रचलित विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, केवलाद्वैत, आदि मतों के प्रसिद्ध दृष्टांतों और उनमें स्वीकृत भक्ति-पद्धति में स्वानुभव को भरकर उनको नये अर्थों में प्रयुक्त किया है।

अखा का अनुभव " अजात अनुभव " है। यह अनुभव अपरोक्षानुभूति-जन्य है। अखा के-से स्वानुभूत " अजात " के वर्णन के प्रकीर्ण उल्लेख वेद तथा

उपनिषदों में बिखरे पड़े हैं। ऋग्वेद के[1] प्रसिद्ध " नासदीय सूक्त " में अजात दर्शन की सूक्ष्म निर्देशयुक्त उक्तियाँ सर्व प्रथम प्राप्त होती है। किंतु इसका विस्तृत एवं न्याय संगत निरूपण सर्व प्रथम आचार्य गौड़पादाचार्य ने " मांडूक्योपनिषद " की टीका रूप में रचित 'मांडूक्यकारिका' में किया है। इसके अतिरिक्त " योगवशिष्ट महारामायण ", " अवधूत गीता ", " अष्टावक्र गीता " तथा - अनाथदासजी कृत " विचार माला " में अखा के-से स्वानुभव का निरूपण होने के कारण अखा के " अनुभव " का निरूपण करते समय इन ग्रंथों से उल्लेख दिये गये हैं। अखा का स्वानुभव गौड़पादाचार्य और शंकराचार्य के सिद्धांतों से बद्ध[2] न होकर विशिष्ट है। क्योंकि गौड़पादाचार्य ने 'चित्तभ्रम' या 'अविद्या' के लिए जिस " माया " शब्द का प्रयोग किया है वह परब्रह्म से न तो कोई स्वतंत्र सत्ता है या न तो उससे उद्भूत है। गौड़पाद ने इसे " विषयी प्रधान "

---

१. दृष्टव्य : ऋग्वेद का नासदीय सूक्त:

अ. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
ऋ० वे० १० [१२६] १.

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास।
-ऋ० वे० १० ।१२६। २

२. "अने एनो विचारपिंड गौड़पादाचार्यना अजातवाद अने शंकराचार्यना केवलाद्वैतथी बंधायेलो छे."
- अखाना छप्पा, उमाशंकर जोशी, भूमिका - पृ० २३

माना है[१]। शंकराचार्य ने इसी माया को प्रधान रूप में स्वीकार कर अपने "माया-वाद" का प्रतिपादन किया। शंकराचार्य ने माया को विषयप्रधान रूप में स्वीकार कर उसे ब्रह्म का "स्वरूप लक्षण" बताकर उससे नामरूपादि का विस्तार निरूपित कर अंततोगत्वा "जगन्मिथ्या" का प्रतिपादन किया[२]। अखा ने "मन" और माया" को एक दूसरे के पर्यायवाची बता कर, माया को "मिथ्या" एवं "अजा" बताया है[३] उससे स्पष्ट होता है कि अखा का अनुभव "मायावाद" से पर की कक्षा

---

१ प्राणादिभिरनंतैश्च भावैरेतैर्विकल्पित:
मायैषा तस्य देवस्य यथा संमोहित: स्वयम् ।।
— गौ० का० १९
यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दन्ते मायया मन:
तथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दन्ते मायया मन: ।।
— गौ०का०२९

२. श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथ कोटिभि:
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापर: ।। वेदांत सिद्धांत मुक्तावली ।।

३. अमन ते माया माया मन ।
— गु० शि० सं० २। १५
आ. १. मिथ्या माया तहां कल्पित अध्यारोप कीनो सही ।
२. अजा अल्प अवांक अंजन, यो जगत पल में तदा ।। चोखारा -१
— ब्र० ली०
३. खोहा गयो बिच बल अजा को, ताही तें चेतन भयो ।१। छंद
— ब०ली० अदायरस पृ० ८७-९०

का, सही अर्थों में " केवल ब्रह्म " अथवा "अज्ञात" का अनुभव है । वेदांतियों के केवलाद्वैत सिद्धांत में मायावाद की गंध[1] निहित होने के कारण उनका सिद्धांत " केवला द्वैत " और " माया वाद " दोनों अभिधानों से पहचाना जाता है, दोनों अभिधान एक दूसरे के पर्यायवाची है जबकि अखा का "केवलाद्वैत" माया वाद की गंध से नितांत रहित है, वह किसी का पर्यायवाची नहीं है, यह "स्वानुभव" मात्र है अर्थात् अखा " स्वानुभवी " संत है ।

इसका मतलब यह स्थापित करने का नहीं है कि अखा ने प्रयोजन वश एवं बलपूर्वक मायावाद का खंडन कर किसी स्वमत का " मंडन " किया है । जैसा कि आचार्य उमाशंकर जोशी ने कहा है -"अखा अनुभवार्थी[2] थे और सर्व वादों से " ऊफरा " अर्थात् पर हो गये थे[3]। वास्तव में अखा ने न तो किसी

---

१. अ. हावे वेदांत कहे छे वात मोटी रतो अजा रमे छे अणाछती

कर्ता कारवता एज माया, दीसे छे जाती आवती । ५ ।।

हतो मायाने माया स्फुरी छे, कर्म जीवने फळ अजा ।

जे जे कर्तव्य ते मायानुं जो धर्मनी बांधी धजा ।

ब. वेदांत ने बात सूझे सूधी, जो माया मुखथी नव बके ।१०।

– अखे गीता, कडवक -६१, पृ० ८२

संपा० भूपेन्द्र त्रिवेदी, सन् १९५८

२. अखो एक अध्ययन, पृ० २६४

३. वही० पृ० २६४

दर्शन का इतिहास लिखने के लिये अपने उद्गार व्यक्त किये हैं और न तो किसी दार्शनिक मत के विकासक्रम का सैद्धांतिक प्रतिपादन करने के लिए। उन्हों ने तो ईश्वर की प्रेरणा से स्फुरित अपने हृदय के भावों को विभिन्न अभिधानों[१] के द्वारा व्यक्त मात्र किया है। [२]

---

१. प्राणपति संग है सदा सब चेतनता ताहे।
ताका प्रेर्या मन अखा कल्य कल्य सब गाये ।।५।। सशे परिहार अंग
— अक्षयरस, साखी
अविरलधारा भल चली मो मुख निजधर बात
न्याहाल होवे सोही नर जेहि ए बेलकुं चाहात ।।१०।। कृपांग, ~~निम्न साखी~~ अक्षयरस।

२. सुकरता की दृष्टि से उन अभिधानों को निम्नलिखित शब्दावली में निर्दिष्ट किया जा सकता है —

वैष्णव:

अ. नर " नरहरि " बिच नहीं अखा एक कागदवा की ओट ।३।
— खलांग, साखी, अक्षयरस।

आ. " राम " रमे जग सारा, संतो भाई " राम " रमे जग सारा । पद—३०

इ. गुरु " गोविंद " " गोविंद गुरु " नाम युगल रूप एक । अखे गीता ।

ई. होनारा सो हो रहा, जे इच्छा था " हरिराय " ।।२।। सहेज अंग

उ. ना होवे नरका किया, सब " नारायण " का जाणा । ३ ।

वेदांत

अ: चौद भुवन में चेतना, " चेतन " की चेत जाणा । २० । प्रेम पीछ अंग

आ: अखा : " आतम " तो एन है, तांहा दिवस नहीं तिथि वार ।२४ ।
— सहेज भक्ति

इ. भ्रम नहीं भ्रमी नहीं, " ज्युंका त्युं " चिद " आप ।

आचार्य शंकर श्रुति के अनुसार समस्त विश्व में एक ही

---

ई. अखा मते "विज्ञानके" सब चिद्रूप एक साल ।२। एकसाल अंग

उ. "परब्रह्म" का परसणा परब्रह्म को लहा।१५। अनंत अंग – साखी

शैव

अ. सो "शिव" मालम तो पड़े जो बुझे हरिजन ।२१। ज्ञान अंग – साखी

आ. अदबद लेख अमाप, स्वयंभू तुं "शिव" सदा । सोरठा –२७

इ. कामना कर्म जहां ना मिले, तहां सहज अखा सब "शिव"। ३ ।

–ज्ञान अंग साखी

योग

१. कोई ज्ञानी जानत ज्ञान यह, जिनुं लहा किया "ॐकार"
   शब्द एक में निपजे, अखा! क्यों पची मरे संसार ?

२. "शब्दातीत" निगम मुख गावे, जागो योगेश्वर ध्यान लगावे

३. सशे मिटे तो सहेज घर पावे, "अलख" "निरंजन" आप लिखावे

४. तहां अविनाशी का धाम है, "हंसे" वासा बसाया

सूफी – इस्लाम

अ. "सांया" साह्य हुवा बिना, ना पाये सुख सीहीर ।१७। ल०ही० अंग-साखी

आ. बिन "खालक" ठौर नहि खाली।झूलना - ९, ब्रह्मरस, पृ० ५७

इ. मन पाया जिनुं "मौले" का, सो तन के बोलड़े क्युं बोले।झूलना - १०, वही०

ई. ~~नर्रि~~ आपे आपमां उठी बला एक कहे राम ने एक कहे "अला"
   "अला" – राम ते केनुं नाम, कोन संभाले निज धाम ! छप्पा ३०४

आत्म तत्व[१] की सत्ता स्वीकार करने के साथ-साथ ब्रह्म को जगत का अभिन्न

---

उ. नांहि हरि हिन्दू आखा ! ना मीरां मुसलमान

ऊ. हक बगर कछु है नहीं, हरदम है नाफिर । ५ । अय कजा अंग

ए. रब वगर रीता नहीं, तो किसे बतावे राह १ । ७ । वही०

संत

---

अ. सो नर साहब कु मिला, जे आप न राखे रंच ।५। मरद अंग -साखी

आ. सहज जाण्या बिन अखा, कबहु न टले बीक । १४ । सहेज अंग – साखी

इ. आपे साहब आप में आधा रच्या संसार ।५ । तपास अंग –५

विशिष्ट अभिधान

---

अ. अखा ! अजरायल छोडि के, न करो और की आश । १५ ।
– शबद परिचय

आ. अणलिंगि को लहे अखा, जे अणलिंगी होय । १४ ।
– भवित अंग– साखी

१. यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् । बृ० उ० ४।५।१५।।

-मांडूक्योपनिषद वैतथ्य प्रकरण २ :३१, पृ० ११२

। गौ० का० शां०भाष्य /

६



उपादान' एवं 'अभिन्न निमित्त कारण'[1] भी बताते हैं। जबकि अखा ब्रह्म की एक मात्र अखंडता एवं संपूर्णता का स्वानुभव व्यक्त करते हैं :

१...... एक नहीं कौन कहे जो धना[2]।

२...... केह्वे कुं दुजा नहीं तो को बांधे पेज[3]।

३...... अखा ज्युं का त्युं ही है तांहां कोण कहे दो एक[4]?

ब्रह्म की पूर्णता - एक रूपता का निरूपण करने के लिए आदि [मुख] और अंत [पछूड़ा] रहित " रोटी " का, सामान्य जन को बोधगम्य, दृष्टांत देते हुए अखा ने कहा है:

रोटी कुं मुख पछूडा अखा कहा न जाइ।
त्युं पूरण ब्रह्म विचार में दुजा, रहेत न पाइ[5]।।

---

१. जगत् जन्म स्थिति ध्वंसा यत: सिध्यन्ति कारणात्
तत्स्व रूप तटस्थाभ्यां लक्षणाभ्यां प्रदर्श्यति ।।६१ ।।
- हिन्दी सर्व दर्शन संग्रह संपा० डॉ० उमाशंकर शर्मा
शांकर दर्शन । पृ० ८८६

२. अक्षय रस, पद ८ पृ० ६६

३. अमृत कला रमेणी : ह०लि०पो०

४. श्री अखाजीनी साखीओ
पारस अंग - साखी -६ पृ० ३५

५. अक्षयरस : महा विचार अंग - साखी पृ० ३२८

आचार्य शंकर के " ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या " प्रतिपादन के विपरीत अखा अणुप्रति अणु में व्याप्त पूर्ण ब्रह्म की स्थापना करते हैं।[१] इतना ही नहीं उपनिषदों में पर ब्रह्म को जो अनादि एवं अज तथा काल, कर्म और माया से रहित निरंजन एवं निर्गुण स्वरूप[२] निरूपित किया गया है, अखा का भी ऐसा ही कथन है :

ओम नमो आदि निरंजन राया, जहां नहीं काल कर्म अरू माया।[३]

जैसा कि श्रुति में पर ब्रह्म को " मन एवं वाणी से पर[४] " बताया गया गया है, अखा ने भी पर ब्रह्म को ऐसा ही बताया है :

१. जहां नहीं शब्द उच्चार न जंता, आपे आप रहे उर अंता[५]।

२. पिंडसूं पर ब्रह्मांड पर अक्षर अकल के पार[६]।

---

१. अक्षयरस : अधम अंग साखी -१ पृ० २१२

२. निष्फलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम्। श्वेताश्वेत०

३. अक्षयरस : ब्रह्मलीला - १, पृ० ८७

४. य तो वाचो निवर्त्तते: अप्राप्य मनसा सह।

५. अक्षयरस: ब्रह्मलीला चोखरा -१ पृ०८७

६. वही० असमानी अंग साखी १५, पृ०३२१

'अद्वैत तत्व' के सामर्थ्य एवं उसकी शक्ति के संबंध में अखा की अनुभूति 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' के ऋषि की अनुभूति के समरूप है[१] :

जाकु नेननहीं सब नेन देखे, बेन नहीं सब बेन सो बोले

कान नहीं सब कानझ्या के, नासा नही सब बास ओले[२]।

परब्रह्म सर्वशक्तिमान है। कोई कृति उसके लिए असंभव नहीं है। किसी कृति में वह आबद्ध भी नहीं है। देश और काल की सीमाओं से वह तत्त्व पर है। 'ईशावास्योपनिषद्' की भाँति[३] अखा ने भी इस तत्व को न तो दूर बताया है और न तो निकट :

कहत बाह्य, अभ्यंतर कहां ते।

कहां ते दूर ! न नेडा[४]।

"मांडूक्योपनिषद" के अनुरूप[५] अखा ने उस तत्व का "स्वयं ज्योति प्रकाश[६]" रूप में अनुभव कर उसे सूर्य और चंद्र के भेद तथा उदय और अस्त की

---

१. अपाणि पादौ जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षु: श्रृणोत्यकर्ण: ।३:१९।

२. अ. अक्षयरस, सं०प्रि० ८७ पृ० १५६

आ. हाथ बिना के हाथ सब, पांव बिना के पांव। ~~कछु बिना का सब~~ कछु बिना का सब कछु, भाव बिना का भाव।२९। अदबद् अंग- साखी

३......तद्दूरे तद्वन्तिके।५। ईशा० ५

४. अक्षयरस : भजन ९, पृ० १११

५. न तत्र सूर्योभाति न चंद्रतारकं।

नेमा विद्युतोभाति कुतो यमग्नि:।।

६. ए तो स्वयंज्योति प्रकाश, अप्र० अ० वा० पृ०३६

अवस्था से परे बताया है:

१. स्फुरी है केवल वस्त जाको उदे नाहीं अस्त[1]

२. आप प्रकाशे दिनमणी सोही जाको दहुंदिश छाया न हो ही[2]।

३. सूर का सूर चादे का चांदा, निशदिन का ताहां न रहे बाधा[3]।

वास्तव में पर ब्रह्म अपने " ज्युं के त्युं ही " रूप में अर्थात् कार्य और कारण तथा सगुण-निर्गुण के भेदरहित,माया से पर, अदबद एवं अनिर्वचनीय रहता[4] है और सदा सर्वदा केवल उसी की संपूर्ण सत्ता विद्यमान है :

पूरनता में बुदबुदा एदा निरंतर होय

अनंत फैल है एक के अखा सो जाने कोय[5]।

जैसा कि"बृहदारण्यकोपनिषद्"में साक्षात्कृत ब्रह्म का शुक्ल, पीत, पिंगल, हरित आदि रंगों के रूप[6] में वर्णन कर अंततोगत्वा " नेति नेति " का प्रतिपादन किया गया है। वैसे ही अखा ने भी ब्रह्म को उपर्युक्त रंगो में

---

१. अक्षयरस, सं०प्रि० ११२ अ, पृ० १६३

२. वही० भजन १६, पृ० १२०

३. वही० भजन २४,पृ० १२८

४. अ. ज्युं का त्युं एक रस संत कर कहत अखा सोनारा। भजन ३०
 — अक्षयरस १३४

आ. ज्युं का त्युं ही आप है, नाम धर्या ना जाई।

इ. कारज कारण दोउनहि कहा न मागे भाउ।विवेकवेता अंग पृ० १६३

५. वही.० स्वे अंग, साखी -५ पृ० २०२

६. दृष्टव्य: बृहद० ४।४।६

से किसी में भी या किसीका भी मिश्रण न बताकर सूर्य की भाँति सब का पोषण करने पर भी सबसे तटस्थ, अनंतनामी एवं सभी प्रपंचों से पार बताया है :

अ : स्वेत में स्वेत सो राम नीलो पीरो लाल श्याम
मिश्रित अनंत नाम आप को धरात है ।
जड़ में जड़ केहे चेहेन चेतनु चेतन बेन
आपको स्वरूप एन, न्यारो रहो जात है ।
सामर्थ्य वेशे ही सत्य, फिरत पतंग गत्य
सोषत पोषत नित्य दूर से आभात हे ।
कहेत अखो विचार रहेत परपंच पार
आप ही आपो समास के सोहों दुरात हे[1] ।

आ: नील पीत ने श्याम उज्ज्वल रक्त भात अनंत
विचित्र भाते विलस्यां त्यांहां ते आपे अंत ।
पण व्योम ते त्यम तुं त्यम थाते जाते त्यमनुं त्यम
वारक प्रेरक नहि अमने वस्तु जाणीये एम[2] ।

चिद्-परब्रह्म की 'निरपेक्षता', 'द्वैताद्वैत' 'विलक्षणता' एवं 'अगमता' का प्रतिपादन करते हुए अखा का कथन है :

ए चिद् ज्यों का त्यों सदाई
ज्यांहा आपा पर नमिले अहर्निश, बेहद हदना कहाई ।

---

१. अक्षयरस सं०प्रि० १११

२. अखाना छप्पा

द्वैता द्वैत अपर निर्गुण सगुण, ए सब कहेवे ताई ।
आपा पर बिन रहत निरंतर ना पंचभूत न कोई
जाता आता तां नहीं रहे रहेणी, गया सकत न आई ।
थोभण, स्योम स्थल बिन स्थिरता, ना ईक्क ना इच्छाई ।
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय विन जे घर, पोहोचत नाहि गिराई ।
लक्षा लक्ष अखा ज्यांहा नाहीं सदा सदोदित सांई[1]।

जैसा कि " अजातदर्शन " में किसी के " जन्म मरण " और " बंधन-मोक्ष[3] " का स्वीकार नहीं है, वैसे अखा का भी कथन है ।

१. ये हि बिधि बूझे अखा अक्षर है ना उपन्या ना समाना[4] ।

२. ना कोई मुआ ना जीवता, नाता हे आवन जावन[5]।

एक मात्र आत्मतत्व की ही सत्ता विद्यमान होने के कारण स्व और पर किसी की भी उत्पत्ति की असंभावना की स्थापना को अधिक स्पष्ट करने के हेतु अखा ने बिना संतान के जन्मे पितृत्व प्राप्ति की असंभाव्यता[6] का दृष्टांत दिया है । जीव की बंधन एवं मुक्त दोनों अवस्थाओं के अस्तित्व का भी ऐसे ही अकाट्य तर्क के द्वारा प्रतिपादन किया है:

---

१. अखेगीता : संपा० प्रो० भूपेन्द्र त्रिवेदी

२. न कश्चित् जायते जीव: संभवोऽस्य न विद्यते ।
   एतद्तद् उत्तमं सत्यं यत्र किंचित् न जायते ।। गौ० का० ३ : ४८

३. न निरोधो न चोत्पत्ति: न बद्धो नच साधक:
   न मुमुक्षुर्न वैमुक्त: इत्येषा परमार्थता ।। गौ० का० २ : ३२

४. अक्षयरस: भजन २७, पृ० १३१

५. वही० शबदातीत अंग, साखी ८  पृ० ३४८

६. आत्मलक्षमां नहि पर आप, वण संताने केनो बाप १ ३१० ।छप्पा।

जो बंधन हुन्या नहीं तो मुक्ति काहे को चाहे[१]।

"अष्टावक्रगीता" में निरूपित ब्रह्म, जीव एवं जगत की एक रूपता के-से[२] स्वानुभव के अनेक कथन अखा में मिलते हैं :

ना सो जीव, ईश्वर पुनि नाहीं ना सेवक ना स्वामी[३]।

इसी वस्तु को अग्नि, ज्वाला और उसकी ज्योत की एकरूपता[४] के उदाहरण के द्वारा समझाया है। अखा का कथन है कि वास्तव में अद्भुत [ अदबद ] अनंत एवं अज ऐसे परब्रह्म का स्वानुभव होने पर खोजी, खोजनीय एवं उसके मार्ग का अनस्तित्व हो जाता है:

अदबद आनंद चलत है, आदि अंत बिन नाट।

ता आगे को कहे अखा ज्यांहां खोजी, खोज न बाट[५]॥

संसार की आदि, मध्य एवं अंतरहितता का निरूपण करते हुए जो बात "गौड़पादाचार्य ने कही है[६], प्रकारांतर से विभिन्न शैलियों में अखा की रचनाओं से उसका समर्थन होता है :

नेतिवाचक शैली

आगे ना था, पीछे ना था, बीच भी नहीं संसारा[७]।

---

१. अक्षयरस

२. अष्टावक्र गीता २ : ५

३. अक्षयरस: भजन-७, पृ० १०६

४. वही०

५. वही० अदबद अंग साखी ५, पृ० १७८

६. आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥ गौ० का० २ : ६

७. अक्षयरस : भजन-३०, पृ० १३४

प्रतिपादक शैली

आद्य अंत मध्य राम है, बीच भी नहीं संसारा[१] ।

प्रश्नवाचक शैली

कब होता ? कब अवतरया ?? कर लीला कहां जाय[२] ?

शंकराचार्य ने " रज्जु भुजंग न्याय " से माया और तज्जनित भ्रांति के सहारे खड़े जगत का मिथ्यात्व स्थापित करनेका प्रयत्न[३] किया है किंतु अखा ने तो मूल वस्तु "रज्जु"-जो जगत का उपादान कारण अर्थात् मायोपेत ब्रह्म माना जाता है, उसके अस्तित्व का ही अस्वीकार कर ब्रह्म और जगत के भेद की सिद्धांत-जनित मान्यता के मूल में ही कुठाराघात किया है:

१. रज्जु लगी सो भुजंग ब्रह्म है, बिन रज्जु कैसो अही[४] ।

२. जति ज्यारे तपास्युं आप, रज्जु नहीं तो शेनो शाप ?[५] ।

३. भ्रम नहीं भ्रमी नहीं ज्यों का त्यों चिद आप[६] ।

जल-तरंग कहेवा अखा नहीं जेवड़ी नहीं साप ।

दृष्ट और श्रुत संसार के दृश्यमान जड़ चेतन पदार्थ एवं विभिन्न भाव-रूप और कुछ न होकर एकमात्र निरपेक्ष [Absolute ] एवं

---

१. अखायरस : भजन-३० पृ० १३४

२. वही० स्वे अंग, साखी ८ पृ० २०२

३. रज्वां भुजंग इव प्रतिभाति वै ।

४. अखायरस: ब्र०ली० छंद ८,:३ , पृ० ६०

५. अखाना छप्पा

६. अखायरस: ज्ञान को अंग, साखी -११ पृ० ३१६

स्वत: पूर्ण हरि[१]- परब्रह्म का ही खेल है यह बात अखा बारबार कहते है :

१. जड़ चेतन नाम ताही के, जाका नाम न रूप

अनंत अल्प शक्ति करी, अखा खेले राम अनूप[२]।

२. पूरण ब्रह्म पूरी रहा, सकल भाव हरि राया[३]।

३. प्रत्यक्ष पियु बिलसी रहा, सकल भाव महाराज[४]।

इस प्रकार यद्यपि अखा ने पारमार्थिक सत्य की दृष्टि से जगत की स्वतंत्र सत्ता का भी प्रत्याख्यान किया है – तथापि व्यवहार में गोचर होनेवाले जगत की उत्पति की प्रक्रिया भी बताई है। यह प्रक्रिया वेदांतानुमोदित है। अखा ने सांख्य के अनुसार पुरूष और प्रकृति के भोग से उत्पन्न सृष्टि की प्रक्रिया का स्वीकार न कर वेदांत के अनुसार " आदि- निरंजन " पर ब्रह्म को अधिष्ठान के रूप में स्वीकार कर उसमें मिथ्या माया का अध्यारोप कर "शब्द ब्रह्म-प्रणव" की "अर्ध मात्रा" से माया को निष्पन्न बताया है[५]। यह माया तम, रज और सत्व

---

१. तुलनीय: स्वत: पूर्ण:परात्मात्र ब्रह्मवद् एषा वर्णित :। पंचदशी,
-महावाक्य विवेक प्रकरणम् श्लोक-४।

२. अक्षयरस: स्वे अंग साखी ७, पृ० २०२

३. वही० अखाजी के पद -३ पृ० ९८

४. वही० प्रत्यक्ष अंग, साखी ३ पृ० १८३

५. ब्रह्मलीला; चोखारा १

ओम नमो आदि निरंजन राया, जहां नहीं काल कर्म अरू माया
जहां नही शब्द उच्चार न जंता, आपे आप रहे उर अंता।

छंद-१

उर अंतरमें आप स्वबस्तु ढिग नहीं माया तबे
अन्य नही उच्चार करिवे स्वस्वरूप होहीं जबे।१।
मिथ्या माया तहां कल्पित, अध्यारोप कीनो सही
अर्ध मात्रा स्वभाव प्रणव सों त्रिगुण तत्त्व माया कही।२।

तीन गुणों को उत्पन्न कर उनके क्रमशः वेदान्त सिद्ध पंचीकरण प्रक्रिया के अनुसार "तमो गुण से पंचभूत और तन्मात्रा", "रजो गुण से अपने अपने देव सहित दश इंद्रियाँ" और "सत्व गुण से अंतः करणचतुष्टय" कुल मिलाकर चौबीस और स्वयं मिलकर पच्चीस तत्त्वों का अपना परिवार बढ़ाकर स्थूल जगत की माता[1] बनती है। इसके अतिरिक्त अखा ने जगदुत्पत्ति के अनेक प्रयोजनों का भी उल्लेख किया है- कोई भगवान की इच्छा मात्र को सृष्टि का हेतु मानते हैं, कोई काल से भूतों की उत्पत्ति स्वीकारते हैं, कोई भोग के लिए सृष्टि का होना

---

१. अखायरस : ब्रह्मलीला

जाये तीन सुत जगतकारन सत्त्व, रज तमसादि भये
पंचभूत अरु पंच मात्रा, तमो गुन केरे कहे । १ ।
देवदश अरु उभय इंद्रिय, बेग उपजे रज हीं के
भये चतुष्टय सत्त्वगुन के काम दोनों कर कज छीके ।।२ ।।
रजो गुन सों आप ब्रह्म तमो गुन सों इंद्र है
सत्त्वगुन सों ~~अम्म~~ विष्णु आपे, सगुन ब्रह्म पहुंची चहे ।।३ ।।
चार चंपक अरू चतुष्टय, एक प्रकृति मूलकी
आपको परिवार बढायो, भई माता स्थूल की ।। ४ ।।
चली आवे कला चिदकी बन्यो पुरूष वैराट ए
कहे अखो माया कहो के, कहो परब्रह्म घाट ए ।। ५ ।।

-पृ० ८८

बताते हैं और कोई क्रीड़ा के लिए जगत की उत्पत्ति कहते हैं।[१] किंतु अखा ने इन सभी मतों का तर्कबद्ध एवं प्रौढ़ रीति से खंडन किया है :

१. कोई कहे कर्ता काल है, कोई कहे स्वभावे होय
   कोई कहे राजा भविष्य है, कर्म प्रधान कहे कोई ।।१।।[२]
   सब कल्पे अनुमान कुं, अपनी बुद्धि अनुसार
   अखा उपन्या देखी कहे अखा सब उल्टा व्यवहार[३] ।२।

२. जेपे कहुं लीला आपण केली, नाना रंग ढिग रहीजु दीखावे
   कहे अखो सबै द्वैत होतु है, एक मेव वेद वचन खंडाये[४] ।।

इस प्रकार सर्व पक्षों का खंडन कर अखा ने सृष्टि का कोई प्रयोजन न बताकर इसे " आप्तकाम " भगवान का "सहज स्वभाव"[५] ही बताया है-

१. सहज स्वभाव है वाके[६]।

२. सहज स्वभाव रमे सभे आप, सहज बानक बनी आई[७]।

---

१. तुलनीय:
   काल: स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनि: पुरूष इति चिन्त्या ।।
   संयोग एषां न त्वात्मभावादात्मानीश: सुख दु:ख हेतो: ।। २ ।। १
   -श्वेताश्वतर०

२. ~~अक्षयरस~~ श्री अखाजीनी साखीओ, निरधार अंग, पृ० ४३.

३. वही०

४. ~~वही~~० अक्षयरस, संतप्रिया १२६, पृ० १६८

५. तुलनीय : देव ~~स्यैष~~ स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा । गौ०का० १७९

६. अक्षयरस : भजन ७ पृ० १०६

७. वही० भजन -१७ पृ० १२१

३. आप बन्यो अपनी मुदा[१] ।

परम चैतन्य एवं परम निधि स्वरूप परब्रह्म की मुदाजनित "सहज विलास" का अनुभव कर उसमें मग्न हो रहने के लिए अखा का कथन है--

परम चेतन कोई परमनिधि ताका है सब सहेज
अखा जो ज्ञानी गर्क हो, मत बांधे तु पेज[२]।

व्यवहार में दृश्यमान परब्रह्म और जगत के रूप-भेद को पानी के बर्फ में रूपांतर-वत् सामयिक एवं स्वाभाविक मात्र बताकर दोनों को अद्वय बताया है--

अखा आलम आत्मा नाम धरनकुं दोय
बरफ जमाया बंध का ताहे पाला कहो चाहे तोय[३]।

"आलम और आत्मा" के ऐक्य की स्वयंसिद्धि को और पुष्ट करने के हेतु कवि ने जिन दृष्टांतों का प्रयोग किया है उन्हें सुकरता की दृष्टि से दो रूपों में निर्दिष्ट किया जा सकता है : स्वीकृति-गर्भ विधेय-वाचक और निषेध-गर्भ नेतिवाचक । स्वीकृति-गर्भ विधेय-वाचक प्रतिपादन में कवि ने

१. एक मन और चालीस सेर[४]।

२. सागर और लहर[५]

---

१. अखायरस

२. वही०

३. वही०

४. टांक और पासेर बहुतेरे, अखा आखर सो एकमनी । तुलना - ४७, अ० रस, पृ०६८

५. दुनिया लहेरी ब्रह्म की उत्पत्ति स्थिति लय ब्रह्म । ३। छेहद, अ० रस, पृ० ३४२

तथा ३. नभ और सूर्य के दृष्टांत[१] दिये हैं जबकि निषेधगर्भ नेतिवाचक प्रतिपादन में १. आकाश-कुसुम[२]

२. वंध्यासुत[३]

तथा ३. गांधर्व नगरी[४] के दृष्टांतों का प्रयोग दिया है।

यह जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह अन्य कुछ न होकर दृष्टागत-मनोदृश्य मात्र है[५]। हमारा मन ही भ्रम में पड़कर द्वैत एवं स्वप्न की कल्पना करता है[६]। अखा का कथन है कि जब तक हमारा मन खड़ा रहता है तब तक

---

१. भिन्न पर्यो कौन कहो कहां ते। ज्युं नभ में दीप समाना ।भजन-१, अ०र० पृ० ११३

२. आलम फूल आसमान का खिले। खर जाये ।भजन-३, वही, पृ० ३०६

३. करता हरता धरता भरता श्रुति गाये बहोत प्रकार।
स्वस्वरूप सचराचर चिद्घन बांस का पुत सोनार ।। अ०रस, पृ० ११

४. अजाये नर सुभट योद्धा, ताही की सेना रची।
गांधर्व नगरी जीतिबेको, चले राय सुंदर सुची ।२।
— ब्र०ली० पृ० १६

~~५. मेरे-ई-स~~

५. मनोदृश्यमिदं द्वैत यत्किंचित्स चराचरम्। गौ० का० ३ : ३१

६. अ. मन चित का कल्पा अखा, आवागमन का कार्य।
आ. सब आरोपण मन का, मन से मिथ्या प्राय।
ताका कीना सब अखा ऐसी चली सदाय ।। अ०रस

यह सारा संसार एवं चौद लोक खड़ा रहता है[१]। अखा का यह भी कथन है कि हमारा मन ही माया है या माया ही मन है[२]। द्वंद्व की प्रतीति और कुछ न होकर माया के फंद या हमारे चित्त "भ्रम" का ही परिणाम है। वास्तव में और वस्तु [ ब्रह्म ] में भेद है ही नहीं - " वस्तु विषे न एके द्वंद्व जे दीसे ते माया फंद।" जैसे एक " मन " [Eighty Pounds ] और " चालीस सेर " एक दूसरे के पर्यायवाची है वैसे ही विश्व और वस्तु एक दूसरे के पर्यायवाची हैं अर्थात् हमारा मन ही माया के द्वारा द्वैत की कल्पना कर आत्मा में भेद करता है। वास्तव में जगत रूप संसार का अस्तित्व है ही नहीं। वेदांत में प्रसिद्ध "कदलीवृक्ष" का उदाहरण देकर अखा जगत या संसार का मिथ्यात्व निरूपित करते हैं :

कंद उखेळे जेम केळ नुं माहि न निकळे काठ
त्यम एवुं रूप संसारनुं तमो सत्य सुणो सहु पाठ[३]।

न तो किसी ने उसे पैदा होते देखा है न तो नष्ट होते[४]।

---

१.अ. कहत अखो मन ताई सब लोक चौद को व्याप।

आ. मनोमय आ चौदे लोक, मनरचित ते सर्वे फोक।

२. मन ते माया माया मन, वह्नि ज्वाला, ते अग्नि।

-गु०शि०सं० २: ५५

३. अखायरस: अ०प०

४. काहु के आगे न हुआ जगत रूप संसार।

सब अनुमान कल्पी कहे पूर्व आचरण बात ॥

-सर्वांगी साखी

अर्थात् मनुष्य स्वयं अज्ञानग्रस्त रहकर अनुमान द्वारा द्वैत की सृष्टि खड़ी करता है। अन्यथा सर्वत्र पूर्णब्रह्म ही समरसरूप में विद्यमान है[१]। दार्शनिक परिभाषा में इसे "दृष्टि-सृष्टि वाद" कहा जा सकता है। अखा के विशेष कर इस वाद के सहारे अपने कथितव्य को निरूपित किया है।

जब हमारा मन ब्रह्म की ओर से मुंह फेर लेता है तब वह जीव स्वरूप हो जाता है और जब ब्रह्मोन्मुख होता है तब वह द्वैताभास से रहित होकर पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

१. जब पूरण ते बिछुड़या, मान लिया आप अलग[२]।

२. मन लागे तब मौला मिले, लाख बातुं की बात येही[३]।

जैसा कि पंचदशी में कहा गया है - हमारा मन ही हमारे बंधन एवं मोक्ष का कारण है[४] - अखा का भी ऐसा ही अभिप्राय है-

१. जो मन मान्यो तो ब्रह्म सबे को, जो मन मान्यो तो जीव सबे[५]।

२. जब लगि अहंता उलटी तब लग सत संसार।[६]
अखा जब सुलटी भई तब तें पाया पार ।।

---

१. होय गया ना होयगा जे है सो अब आप।
ख्यालक विन ख्याली नहीं खलक ख्याली का व्याप ।। २३ ।।
-- निष्ट ज्ञान, पृ० १६५

२. अक्षयरस

३. वही० झूलना -५६ ।

४. मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो:।

५. अक्षयरस, सं०त्रि०-४४, पृ० १४८

६. वही०

मनुष्य को जो द्वैत दर्शन होता है उसके रहस्य को बताने के लिए " कांच के मंदिर में " कुत्ता " और " नदी के तट पर उगे द्रुमादि " के दृष्टांत देकर अखा ने कहा है :

१. ज्युं कांच मंदिर में कूकरो भसू मर्यो सिर फार
भिन्न भिन्न देखा स्वान जब प्रतिबिंब बिना विचार ।
सोहो मंदिर में नरवल्या ठोर ठोर देख्या आप
अखा निरमल जे नरा, ताकु आत्यम व्याप ।[1]

२. जैसे द्रुम सरिता उप वहे वहेते देत दिखाई
स्थल ते चल विचल नव होवे, जूठी शंका पाई[2]।

गौड़पादाचार्य ने मन निर्मित अथवा माया संचालित द्वैताभास को मिटाने का मार्ग बताया है । उनका कथन है कि मन जब कल्पना करना छोड़ देता है अर्थात् मन को जब " अमन " किया जाता है तब सारा द्वैत प्रसार स्वयमेव नष्ट हो जाता है -

आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा ।
अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम्[3] ।।

अखा ने भी मन को " अमन " करने की बात कही है । अखा ने ढांके [ आवृत्त ] दर्पण का उदाहरण देते हुए कहा है कि जिस प्रकार दर्पण के आवरण से ढंक जाने पर उसमें प्रतिबिंब नहीं पड़ता उस प्रकार मन के " अमन "

---

१. अखायरस

२. वही० भजन १०, पृ० ११२

३. मांडूक्योपनिषद । गौ० कारिका । ३; ३२.

हो जाने पर साधक की रहेणि करणी के बंधन छूट जाते हैं :

ज्युं ढाके दर्पण प्रतिबिंब नाही, त्युं मन अमन तो रहेणी काही[१] ।

अखा का कथन है कि बिना मन को मारे न तो इहलोक और परलोक की कामनाएं नष्ट होती हैं न तो जीव की आवाजानी मिटती है : और न तो "मूल तत्व- राम" को पाया जाता है[२]।

मन का नाश कर मनातीत को प्राप्त करने की कला अखा को अपने सद्गुरू के पाससे मिली है -

मनकु मेट मनातीत पावे सो तो अखो कहे गुरुकल न्यारी[३] ।

जब मनातीत की उपलब्धि अर्थात् परब्रह्म के साथ अभेद की अनुभूति होती है तब साधक की स्थिति अतीव निराली हो जाती है । इसे "अस्पर्श - योग" या "अद्वैतानुभव" की स्थिति कहते हैं । अखा ने अपरोक्षानुभूति जनित

---

१. अक्षयरस: पद-१६ पृ० ६६

२. वही० सं०प्रि०-१२ पृ० १४०

३.अ. मन मुआ तब रहे एक रामा, इहलोक परलोक की भागी काना ।

आ. मन मारा तब मूल पाया ।

--फूलना ५२, पृ० ६८

इ. मनकी लगन लगत है ज्यां त्यां, तब लग आवाजानी

सोचविचार समावे ये मनको येहि दशा उर आनी ।

-भजन -२५ पृ० १२६

ई. मन जगत का धारण हारा मन मुवे मिथ्या संसारा ।

ब्रह्मात्मैक्य को "पोत" [ वस्त्र ] और उस में कढ़े चित्र तथा "वस्त्र और उसके ताने बाने" के उदाहरणों के द्वारा रूपायित करने का प्रयत्न किया है। पोत और उसमें कढ़े चित्र तथा उसके ताने बाने की अद्वयता के उदाहरण द्वारा अखा परब्रह्म और चित्त [ अपनी ] की एकता की कहानी कहते हैं -

१. चित्त चिद भिन्न ना होत पोत को देख नातो[१]।

२. ज्युं कपड़ां ते सुत ज्युं का त्युं ऐसे आप चिह्निन्या[२]।

स्वयं को "प्रेमदा" और परब्रह्म को "पियु" कहकर कवि ने अपने दोनों के ऐक्य को तरंग और सागर के रूपक द्वारा मधुर ढंग से आव्यक्त किया है:

आज कल की नहीं अखा प्रेमदा पियु के संग
नेह निरंतर चला है ज्युं सागर तरंग[३]।।

अपने प्रियतम के नहीं मिलने के समय तक प्रेमदा बहुत हैरान परेशान थी[४]। किंतु अपने "प्यारे" को पाने पर प्रेमदा के आनंद का कोई वारवार नहीं रहा[५]।

अपने पिया के आनंद रूप[६] की कहानी अखा से न तो कहते बनती है और न तो लिखते बनती है[७]।

---

१. अक्षयरस : कुंडलिया -११ पृ० ५

२. वही० भजन २. पृ० १०४

३. वही० कृपा अंग साखी-१४ पृ० २८७

४. गुप्त हैरानी बहुदिना अब भयी मालूम मोय ।१५।। कृपा अंग पृ० २८७

५. अक्षयरस: भजन-३१ पृ०१३५

६. आपे आप आनंद अनंत गत । पद ६ पृ० ६६

७. क्या रे कहुं बनत नहीं कहते, अकथ कहानी लखी न जाय पाते । पद-७
— अ०रस, पृ० ९६

ब्रह्म का "रस रूप" में[1] वर्णन कर उसके पाने में ही नहीं पचाने में भी जो मुश्किल है उससे " ज्ञानी " अखा भली भाँति अवगत है[2]।

अखा ने वह "पियूष" पाया है और उसके पचने का ही यह परिणाम है कि उनमें " महा अनुभव " का प्रकाश हुआ है[3]।

यह " महा अनुभव " अवाच्य और " अणलिंगी है[4]।

" राम रसायण " के पानजनित चढ़ी हुई " ब्रह्मखुमारी " के कारण अखा का चित्त "चिद्रूप" अर्थात् " ज्युं का त्युं " हो गया है –

१. राम रसायण जब जिनही पियो है।

ता के नैन भवे कछु और, जब ही प्यालो भानु कान ही दियो है[5]।

२. उतरत नांही ता के ब्रह्मखुमारी, वाकु कबहुं न काल ग्रह्यो है।

ज्युं का त्युं अखा है निरंतर चित्त चिद्रूप लयो सोभियो है[6]।

इस प्रकार पूर्ण ब्रह्म में मिलकर एकरूप हो जाने का "जीवन-लक्ष" सिद्ध हो जाने पर अखा निश्चिंत हो गये है –

---

१. अ. पारब्रह्म रसरूप मना । पद-५ अक्षयरस

आ. आपे आप आनंद केवल रस । अक्षयरस

२. मुश्किल ब्रह्मरस पावना, पचणा भी मुश्किल।

ज्ञानी और रसायणी, चाहिए मुखता दिल । ।५ शिक्षा अंग, साखी

३. पिया है पियूष पच्यो ह्रदामें, महाअनुभव प्रकाश दियो है।

–अक्षयरस: पद-५ पृ०६५

४. वही० अखाजी के पद-२ पृ०६३

५. वही० पद-५ पृ० ६५

६. वही: पद-५ पृ०६५

पूरण में आसे मिल्या लक्ष भयो तद्रूप।

अखा काम इतनाई है, समफी भया स्वरूप[१]॥

इस "स्वरूप" प्राप्ति या आत्मलीनता या परब्रह्म के साथ एकरूप हो रहने की[२] दशा का वर्णन करने के लिए अखा ने "सागर में रसबस रहनेवाली मछली" का सुंदर दृष्टांत दिया है :

ज्युं दरियाव की मछली को नैन वैन खोले सो नीर मांहां

युं मुजको बनी रही अखा[३]।

अपने "साँई" के आठों प्रहर-साँस उसाँस में ही भरे होने के कारण अखा की स्थिति नीर में ताली बजाने की भांति बड़ी विषम है। इस स्थिति को वे ही समफ सकते हैं जो उस देश से आये हो या उस देश के ज्ञानी हो :

आठों पोहोर अंग मांही है पलक न छोड़त पास।

अखा एतने ते रखा सांइयां ~~न-छोड़त-मास-न सम्हसर्-~~ सांस उसांस[४]।

---

१. अक्षयरस

२. तुलनीय:

He had reached the highest stage that Vedāntin aspires to. He had known the Unity of Jiva and Ishvara; He had reached the final beatitude and become one with the Brahman. - Dr. K. M. Zaveri.

- साहित्यकार अखो पृ० ११२

३. अक्षयरस: फूलना-२०, पृ०३०

४. अक्षयरस : आवेश अंग, साखी-३ पृ०३७६

ताली न बाजत नीर में मुखां न आवे बोल
ऐसो अखा को बोलणो कोई डींग कहो कि अमोल[1]।
बोली कोई समझत नहीं अखा के देश की बान्य
समझत उतका आइया समझत उत जांना[2] ।।६।।

-आवेश अंग , अ०रस

---

१. अक्षयरस: आवेश अंग साखी-५, पृ० ३७६

२. वही० साखी-६